2 अप्रैल से पूर्व प्रकाशित न करें

Website : www.eklavya.in

स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजें

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in

मानव विज्ञान

बहिष्कृत पहचानः एक पारधी कथा

डॉ. अमन मदान

पहचान की राजनीति हमारे ज़माने की पहचान है। एक बहु-सांस्कृतिक समाज में सांस्कृतिक पहचान को रेखांकित करने के अपने फायदे भी हैं। मगर साथ ही यह हमें समूहों के बारे में कुछ सामान्य पूर्वाग्रह बनाने को भी उकसाता है। किसी पूरे के पूरे समुदाय को एक रंग में रंग देने के भयावह परिणाम कई रूपों में सामने आते हैं। भोपाल की एक किशोर लड़की इसका एक उदाहरण है जिसने कुछ सप्ताह पहले खुदकुशी कर ली थी। यह संयोग ही था कि उसका जन्म पारधी समुदाय में हुआ था। लड़की कचरा बीनने का काम करती थी। उसे व उसकी भाभी को भोपाल पुलिस ने पकड़ लिया था। जैसा कि होता आया है, उसे घर से 500 रुपए लाने को भेज दिया गया जबकि उसकी भाभी को थाने में ही बैठाकर रखा गया। वापिस लौटकर उसने यह पैसा कानून के रक्षकों को दे दिया, घर गई और फांसी पर लटक गई।

पूछताछ करने पर पुलिस का जवाब यही था कि वह तो पारधी लड़की थी। वह हमदर्दी की हकदार नहीं है।

यह घटना दुनिया के अन्य हिस्सों में परिया (बहिष्कृत) समुदायों के अस्तित्व का आम पैटर्न है। समाज की ऊंच-नीच में सबसे नीचे दबे-कुचले किसी समूह पर कोई लेबल लगने लगता है, जो एक कलंक जैसा होता है। इसके बाद उस समूह को हर जगह पहचाना जाता है और वह भेदभावपूर्ण व्यवहार के लिए चिन्हित हो जाता है। उसके सदस्य सामान्य रोज़गार नहीं पा सकते और उन्हें असाधारण तरीकों से जीने को मजबूर होना पड़ता है। वे सामान्य समाज के दायरे से बाहर के क्रियाकलापों पर मजबूर हो जाते हैं और ऐसे काम करके जीते हैं जो अन्य लोगों को नहीं करने पड़ते। आम तौर पर परिया समुदायों के लोग खेतों और कारखानों में अनियमित दिहाड़ी मज़दूरी के अलावा शराब के धंधे या छोटी-मोटी चोरियों या वेश्यावृत्ति में लिप्त रहते हैं। जब समाज आपके खिलाफ हो जाए, तो आपको ऐसे ही दायरों में जीवन यापन करना होता है।

नतीजा यह होता है कि उस समूह पर थोपी गई यह रूढ़ छवि पुष्ट होने लगती है कि वह अपराधियों का एक झुण्ड है जो कानून की इज्ज़त नहीं करता। यह एक दुष्चक्र बन जाता है - मुख्य धारा एक रूढ़ छवि का इस्तेमाल करती है, जिसकी वजह से परिया समुदाय का व्यवहार निर्धारित होने लगता है। यह व्यवहार फिर व्यापक समाज में उस रूढ़ छवि को और मज़बूत करता जाता है।

अमेरिका के घेटो में रहने वाले गरीब अश्वेत लोगों और युरोप के रोमानी जिप्सियों के बीच इस पैटर्न का काफी अध्ययन किया गया है। इसके अलावा भारत की तथाकथित *डीनोटिफाइड ट्राइब्स* के भी अध्ययन हुए हैं।

पहचानें मानव जीवन का अंतरंग हिस्सा हैं। पहचान के एहसास के बगैर मैं विभिन्न लोगों या विभिन्न समूहों के बीच भेद नहीं कर पाऊंगा। मगर एक परिया पहचान की रचना खास तौर से हानिकारक है। यह पहचान एक बहिष्कृत समूह की पहचान होती है और शेष समाज से एकदम अलग-थलग चिन्हित होती है।

अक्सर हम सब अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग पहचानों के बीच सहजता से बहते रहते हैं। जैसे, किसी एक स्थिति में मैं एक महिला हूं, तो किसी अन्य समय पर इंजीनियर जबकि किसी तीसरी स्थिति में शास्त्रीय संगीत का रसिक, वगैरह। मगर जब लेबल सख्त हो जाते हैं, तो पहचानों के बीच गतिशीलता बहुत मुश्किल हो जाती है।

राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (डी.एस.टी.) की एक परियोजना

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य या एन.सी.एस.टी.सी. का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

उन्नीसवीं शताब्दी में अमरीका के अधिकांश अश्वेतों के लिए यह असंभव था कि वे प्रोफेशनल बन सकें। उच्च शिक्षा के लगभग सारे संस्थान उनके लिए बंद थे। बाकी सब बातों को अनदेखा करके उन्हें सिर्फ नीग्रो के रूप में देखा जाता था।

बहुत विषमता पूर्ण समाजों में एक हद तक बंद दायरे होते हैं। आप किसी समूह में जन्म लेते हैं और प्रायः उसी समूह में बने रहते हैं। कुछ व्यक्ति ज़रूर जन्मजात लेबल से पीछा छुड़ा पाते हैं मगर ऐसे व्यक्ति इक्के-दुक्के ही होते हैं। दायरों के बंद होने के मामले में समाजों में काफी विविधता होती है। अत्यंत सख्त बंद दायरों वाले समाज में समूह-पहचान ही व्यक्ति पर हावी हो जाती है और उसकी हर गतिविधि को प्रभावित करती है।

उपरोक्त किशोर लड़की पारधी समुदाय से थी। पारधी समुदाय की उत्पत्ति वही है जो उनके क्षेत्र के अन्य समुदायों की है। जब ब्रिटिशों ने भारत पर कब्ज़ा जमाया तो पारधी समुदाय के लोग जंगलों के साथ निकट सहयोग से रहते थे, वनोपज का शिकार, संग्रह व व्यापार करते थे। जब ब्रिटिश हुकूमत ने जंगलों पर अपनी पकड़ मज़बूत की, तो पारधियों के लिए जंगल के भरोसे रहना संभव न रहा। उनके पास कोई ज़मीन नहीं रही और न ही जीविका का कोई साधन। वे जैसे-तैसे जीवन निर्वाह करने को मजबूर हो गए। ऐसे में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि कुछ पारधी लोग मौका मिलने पर चोरी भी करने लगे।

ब्रिटिश लोग ऐसे कई समुदायों को 'अपराधी जनजातियां' कहने लगे। वे जहां भी जाते, औपनिवेशिक पुलिस उन्हें सताती व प्रताड़ित करती थी। इस एक पहचान में उनके अस्तित्व के बाकी सारे आयाम दब गए।

आज़ादी के बाद इस लेबल का स्थान एक अन्य लेबल ने ले लिया - *डीनोटिफाइड ट्राइब्स*। यह आधुनिक भारत में दायरे बंद किए जाने की एक दुखद अभिव्यक्ति है कि पूरे भारत में *डीनोटिफाइट ट्राइब्स* को कलंकित व प्रताड़ित किया जाता है।

यदि किसी के सिर पर 'अपराधी' होने का कलंक लगा है, तो कौन उसे नौकरी देगा? जहां शेयर मार्केट में धोखाधड़ी करने वाले हमारे समाज में कलंकित नहीं होते, वहीं तथाकथित पूर्व-अपराधी जनजातियों के लोग अपनी पहचान को ढोने को और घोर गरीबी में जीने को मजबूर हैं। पारधियों के घरों पर जाकर देखें तो बेरोज़गारी, सुविधाओं का अभाव और कुपोषित बच्चे ही नज़र आएंगे। यदि ये लोग अपराधों में लिप्त हैं, तो ज़ाहिर है, इससे उन्हें कोई फायदा नहीं होता है।

जब कभी रात में कहीं हिंसक डकैती होती है, तो पुलिस के लिए पारधी लोग सबसे आसान बलि के बकरे होते हैं। मीडिया इसमें खुशी-खुशी पुलिस का साथ देता है। जब कभी कोई काला कच्छा गिरोह किसी घर पर हमला करता है तो पुलिस सबसे पहले उस इलाके के पारधियों की धुनाई कर देती है। सच्चाई यह है कि इस तरह प्रताड़ित करने के लिए सबूत कुछ नहीं है।

डीनोटिफाइड ट्राइब्स देश की जनसंख्या में करीब 7 प्रतिशत हैं। यदि ये सचमुच अपराधी हैं, तो देश में हर जगह डकैतियां क्यों नहीं होतीं? ज़ाहिर है कि पारधी जैसे किसी समुदाय में से अपराधी गतिविधियों में लिप्त लोगों की संख्या बहुत कम है। ज़्यादा सही चित्र यह है कि पेट भरने के लिए उनकी औरतें और बच्चे गलियों में प्लास्टिक बीनते हैं।

समाज शास्त्र और मनोविज्ञान में ऐसे कई अध्ययन हुए हैं, जिनसे पता चलता है कि किसी व्यक्ति को अपराधी बनाने का सबसे आसान तरीका यह है कि उस पर अपराधी होने का लेबल चस्पा कर दिया जाए। कलंकित होने की भावनात्मक कीमत बहुत भारी होती है। अमरीका में अश्वेतों के अध्ययनों से कई समस्याएं सामने आई हैं - आत्म सम्मान की कमी, बढ़ता तनाव, जीवन में महत्वाकांक्षा का अभाव और इन सबसे बढ़कर यह एहसास कि आप इससे बेहतर के हकदार नहीं हैं। इससे उनमें जीवन में आगे बढ़ने की लालसा कम हो जाती है।

यह समझना ज़रूरी है कि पारधियों की वर्तमान स्थिति के लिए व्यापक समाज भी ज़िम्मेदार है। ऐसे समुदायों के बहिष्कार व उन पर लेबल चस्पा करने से उन्हें हाशिए पर बनाए रखने में मदद मिलती है। इसका जवाब कुछ हद तक राजनैतिक व सामाजिक परिवर्तन में है - पारधियों को अच्छे स्कूल और रोज़गार के बेहतर अवसर उपल्बध होने चाहिए।

व्यापक समाज में एक सांस्कृतिक परिवर्तन भी ज़रूरी है। लोगों पर सदा के लिए लेबल लगा देना बंद होना चाहिए। लोगों को उसी रूप में देखने की ज़रूरत है जैसे वे सचमुच हैं - कई पहचानों के मिले-जुले इन्सान, जिनकी मात्र एक पहचान जनजातीय पहचान है। जब समाज पारधियों को रूढ़ छवि में कैद करके देखना बंद करेगा, तभी वे सचमुच फल-फूल सकेंगे। तभी किसी किशोर लड़की को सिर्फ अपने जन्म के संयोग के चलते जान नहीं देना होगी। ***(स्रोत फीचर्स)***